शक्तितत्त्व-मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीपुरुषोत्तमपुरीक्षेत्रस्थ-उड्ड्याणपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

श्रुति-स्मृतियोंमें ब्रह्म और माया (शिव और शक्ति) की जहाँ एकरूपता सिद्ध है, वहाँ दोनोंकी विलक्षणता और जगत्कारणता भी सिद्ध है। लक्षणसाम्यसे वस्तु साम्यके कारण ब्रह्म एवं मायाकी एकरूपता मान्य है— **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**, **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** (तैत्तिरीयोपनिषद् २।१) आदि स्थलोंमें ब्रह्मसे और **'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।'** (देव्युपनिषद्) आदि स्थलोंमें माया-शक्तिसे प्रपञ्चोत्पत्यादिका निरूपण है। इस तरह लक्षणसाम्यके कारण शिव और शक्तिकी एकरूपता मान्य है। **'बहु स्यां प्रजायेय'** (छान्दोग्योपनिषद् ६।२।३), **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (निरालम्बो०)(छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१) आदि श्रुतियाँ ब्रह्ममें बहुभवनसामर्थ्य और उसकी बहुरूपताका वर्णन कर शिवतत्त्वकी उपादानकारणताको सिद्ध करती हैं। छान्दोग्यश्रुति मृद्विज्ञानसे घटादि-विज्ञानको दृष्टान्तरूपसे प्रस्तुतकर 'ब्रह्मविज्ञानसे सर्वविज्ञान' तक की प्रतिज्ञा करती है। महर्षि बादरायणविरचित ब्रह्मसूत्रोंसे भी यही रहस्य विदित होता है—**'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'** (ब्रह्मसूत्र १।४।२३), **'तदैक्षत्'** (छान्दो० ६।२।३) **'सोऽकामयत'** (बृह० १।२।४), **'स ईक्षाञ्चक्रे'** (प्रश्नो० ६।३) आदि उपनिषद्-वचन चेतन परब्रह्मको ही जगत्का निमित्तकारण सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार 'शिव' सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक, स्थावर-जङ्गमात्मक या क्रिया-कारण-फलात्मक जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारण सिद्ध होता है—**'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेता० ४।१०) के अनुसार मायाशक्तिको उपादान माने तो **'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः'** (भगवद्गीता ९।१०) **'इन्द्रो मायाभिः'** (बृह० २।५।१९) के अनुसार उसीको निमित्त मान सकते हैं। इस तरह माया-शक्ति भी जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण सिद्ध होती है।

ऐसी स्थितिमें मायानामक शक्तिको परिणामी अभिन्न-निमित्तोपादान और शिवको विवर्ती अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण स्वीकार करने पर सृष्टिपरक वचनोंकी शाक्त और शाम्भव उभय उपासना-पद्धति(**'उपासना द्विविधा शाम्भवं शाक्ती चेति'**) की संगति सध जाती है। वेदान्तमें शक्तिकी शिवरूपता 'बाधदृष्टि' [**"नास्ति सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः॥ ...माया स्वात्मनि कल्पिता"** (पाशुपतब्रह्मोपनिषद् ४४,४५)] से और शिवकी सर्वरूपता तथा शक्तिरूपता 'अध्यास-दृष्टि' से है अथवा सर्व-सर्वात्मामें, व्याप्य-व्यापकमें, स्वतन्त्र-अस्वतन्त्रमें अभेदसम्बन्धकी दृष्टिसे–(श्रीनिम्बार्कादि वैष्णवाचार्योंके मतमें) शिव और शक्ति (भगवत्तत्त्व और भगवती) में साम्य सिद्ध है। अथवा श्रद्धा-विश्वास, चिति-चित्, संवित्-बोध, सुख-आनन्द, ब्रह्म-आत्मा, प्रकृति-पुरुष आदिकी तरह लिङ्गभेद होनेपर भी दोनों (शिव-शक्ति) में वस्तुभेद नहीं है।

आश्रय-विषय-निरपेक्ष 'शक्ति' संविदानन्दस्वरूप शिव ही है। आश्रयरहित होनेके कारण शक्तिकी चिद्रूपता और विषयरहित होनेके कारण उसकी आनन्दरूपता है। यद्यपि सांख्योंके मतमें प्रकृति (प्रधान) आश्रय निरपेक्ष है। फिर भी स्वयं परार्थ होनेके कारण विषयरूप है या उपादान होने के कारण विषयरूप है और विषयोत्पादक भी। वह विषयसापेक्ष इसलिये भी है; क्योंकि कार्यानुमेया है। [**"सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।"**(सांख्यकारिका ८), **"सुखदुःखमोहात्मक-महत्तत्वादि पृथिव्यन्तं जगत् सुखदुःखमोहात्मककारणकं कारणतादात्म्यकार्यत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा आत्मा।"** (सांख्यकारिकाकी व्याख्या)] कारणगत विविध प्रकारकी शक्तिका अनुमान त्रिविध प्रकार के कार्यको देखकर ही होता है। बीजमें अङ्कुर, पत्र-पुष्प-फलादि उत्पन्न करनेवाली परस्पर विलक्षण शक्तियोंका अनुमान अङ्कुरादि परस्पर विलक्षण कार्योंको देखकर ही होता है। सुख-दुःख-मोहात्मक प्रपञ्चको देखकर सुख-दुःख-मोहात्मक प्रधानका अनुमान होता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार आश्रय-विषय–सापेक्ष वृत्तिरूप ज्ञान जड़ और आश्रय (ज्ञाता) विषय (घटादि) सापेक्षज्ञान 'चिति' रूप है। उसी प्रकार

आश्रय-विषय–सापेक्ष शक्ति जड़ और आश्रय-विषय-रहित शक्ति ‘चिति’रूपा है।

आश्रय-विषय–सापेक्ष शक्तिके द्योतक विविध अभिधान— जहाँ ‘शक्ति’ आश्रय-विषय–सापेक्ष है, वहाँ यह अविद्या, प्रकृति, मायी, तम आदि नामोंसे कही जाती है। [**‘एषाऽऽत्मशक्तिः’** (देव्युपनिषद् १०), **‘मायां तु प्रकृतिं विद्यात्’** (श्वेता० ४।१०), **‘माया चाविद्या च स्वयमेव भवति’** (नृसिंहोत्तर० ९), **‘गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिः’** (पैङ्गलो०), **‘सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या विद्या’** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो०), **‘तमः शब्देनाविद्या’** (त्रिपाद्विभूति० ४), **‘सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपद्यते’** (सरस्वतीरहस्यो० १४), **‘माया च तमोरूपा’** (नृसिंहोत्तर० ९), **‘ब्रह्मैव स्वशक्तिं प्रकृत्याभिधेयार्पितस्य’**, **‘ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः’** (निरालम्बो०), **‘अनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च।’** (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ४), **‘अविद्या प्रकृतिं विद्धि’** (योगवासिष्ठ ६।९।६)] आश्रयका आवरक होकर शक्ति अविद्या या अज्ञान मान्य है। ऐसी स्थितिमें वह ‘तम’ कहने योग्य है। आश्रयका अविमोहक होकर वह ‘माया’ मान्य है। एक ही वस्तु माया और अविद्या नामसे व्यवहृत हो सकती है। अनावरक और आवरक होनेके कारण मायावी उसकी (अपनी) मायासे त्रिमोहित नहीं होता, पर दृष्टिबन्ध या चक्षुर्बन्धके द्वारा वह अनभिज्ञोंको विमोहित करता है। देहलीपर लगा हुआ ‘चिक’ (पर्दाविशेष) कक्षमें विद्यमान व्यक्तिके लिये अनाच्छादक और बाहर विराजमान व्यक्तिके लिये आच्छादक होनेके कारण क्रमशः माया और अविद्या-तुल्य है। यह बात दूसरी है कि भगवान् लीलापूर्वक ही विमुखमोहिनी और स्वजनमोहिनी मायाके समान ही स्वमोहिनी मायाको भी स्वीकार करते हैं।

शक्ति के अवान्तर भेद अनेक होनेपर भी वस्तुतः वह एक ही है। यद्यपि **‘अजामेकाम्’** (श्वेता० ४।५) के अनुसार वह एक और **‘इन्द्रो मायाभिः’** (बृह० २।५।१९), **‘परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते’** (श्वेता० ६।८) इन श्रुतियोंके अनुसार ‘शक्ति’ विविध सिद्ध होती है, तथापि अनेक माननेमें गौरव और एक माननेमें लाघव है। यद्यपि शक्ति-अनेकत्व स्वाभाविक मानकर उसके अनेकत्व-प्रतिपादक वचनोंकी सिद्धि जातिमें एकवचन मानकर भी साधी जा सकती है, तथापि इस प्रकारकी सङ्गति लाघवानुगृहीत नहीं है। मायाको एक और मायागत शक्तिको अनेक मानकर तथा उसीको जीवात्माकी उपाधि मानकर एक जीवकी सिद्धि होनेमें लाघव है। जीवके अनेकत्वकी प्रतीति तो देहात्मभावके समाश्रयसे स्वप्नवत्-भ्रम सिद्ध है— **‘रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव’** (कठो० २।२।९) आदि श्रुति उसीका अनुवर्तन कर शनैः-शनैः परावरीयक्रमसे सत्यसहिष्णु बनानेके अभिप्रायसे प्रवृत्त है। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसकी लोकोत्तरचमत्कृति स्वप्न-रचनामें समर्थ जीवनिष्ठ निद्राशक्तिवत् कैमुतिकन्यायसे सिद्ध है। [**निद्राशक्तिर्यथा देहे दुर्घटस्वप्नकारिणी। ब्रह्मण्येषा स्थिता माया सृष्टिस्थित्यन्त-कारिणी॥** (पञ्चदशी १३।८६)]। **‘मायाम्’** (श्वेता० ४।१०), **‘अजामेकाम्’** (श्वेता० ४।१०), तथा **‘अजो ह्येकः’** (श्वेता० ४।५) में जीव (पुरुष) की एकरूपता मान्य है।

शक्त (शक्तिमान्) को विविध शाक्य (कार्य) रूपोंमें व्यक्त करना अथवा शक्तिमान् के समाश्रित रहकर स्वयंको ही विविध रूपोंमें व्यक्त करना और कार्यगत धर्मोंको नियमित रखकर सांकर्यदोषसे होनेवाले विप्लवसे प्राणियोंकी रक्षा करना शक्तिवैभव (शक्तिका अद्भुत चमत्कार और स्वभाव) है। जिस प्रकार एक ही तेज अधिभूत ‘रूप’, आध्यात्म ‘नेत्र’ और ‘आधिदैव’ आलोक(सूर्य)के रूपमें व्यक्त होता है, अर्थात् तेजका आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक रूप क्रमशः रूप, तेज और सूर्य है अथवा तेजमें समाश्रित शक्ति ही नेत्र, रूप और आलोक-रूप त्रिपुटीरूपमें अभिव्यक्त है, वैसे ही समस्त अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म-प्रपञ्चके रूपमें एक ही शक्ति विलसित हो रही है। इस तरह अध्यात्मवर्ग ही शक्तिका आध्यात्मिक रूप है। अधिभूतवर्ग ही उसका आधिभौतिक और आधिदैवमण्डल ही उसका आधिदैविक

रूप है। आधिदैवरूपमें शक्तिका सत्त्वप्रधान, अध्यात्मरूपमें उसका वैकारिक (सात्त्विक) और तैजस (राजस) प्रधान अभिव्यञ्जन है।

अवतारवादकी उत्थानिका और समन्वयकी स्वस्थ रूपरेखा— आध्यात्मरामायणादिके आध्यामिक पक्षपर विचार करें तो शिव, विष्णु, गणपती, सूर्य और इनके विविध अवतार भी शक्तिके ही अवतार हैं। दार्शनिकता यह है कि वेदान्तवेद्य भगवत्तत्त्व निर्गुण-निराकार और शक्ति सगुण-निराकार है। अवतार-विग्रह सगुण-साकार है। सगुण-साकारकी अपेक्षा सगुण-निराकार और सगुण-निराकारकी अपेक्षा निर्गुण-निराकारका व्यावहारिक महत्त्व कम परिलक्षित होता है। ऐसा होनेपर भी दार्शनिक (प्रामाणिक) सर्वाधिक महत्त्व निर्गुण-निराकारका प्रत्यत्त्व, निर्विशेषत्व, अविक्रियत्वादिरूप हेतुओंसे है। ऐसी स्थितिमें 'शक्ति सगुण-निराकार ही बनी रहे और शक्तिमान् सगुण-साकार हो जाय, इस पक्षमें सगुण-साकार नियम्य और सगुण-निराकार नियामक बना रहेगा; यदि शक्ति ही सगुण-साकार हो जाय तो शक्तिका ही अवतार मान्य होगा।' ऐसी आशङ्काका परिहार इस प्रकार है कि जैसे दर्पणकी अपेक्षा उसके योगसे अभिव्यक्त-सूर्य (प्रतिबिम्बात्मक सूर्य) का अधिक महत्त्व होता है, वैसे शक्तिकी अपेक्षा अभिव्यक्त शक्तिमान् का अधिक उत्कर्ष द्योतित होता है। ब्रह्माजीसे अभिव्यक्त श्रीवराहरूप भगवद्विग्रहका ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंकी दृष्टिमें अधिक महत्त्व प्रसिद्ध ही है। अथवा जैसे काष्ठयोगसे अभिव्यक्त होनेपर भी दाहक प्रकाशक वह्नि ही मान्य है, तद्वत् शक्तियोगसे स्फुरित होनेपर भी अवतारी और उद्धारक भगवत्तत्त्व ही मान्य है। मृन्निष्ठ पिण्डोत्पादिनी शक्तिके योगसे व्यक्त पिण्ड भी मृत्पिण्ड ही मान्य है, शक्ति-पिण्ड नहीं। समन्वयकी दृष्टि यह है कि 'मृद्योगसे पिण्डोत्पादिनी शक्ति पिण्ड बनती है अथवा पिण्डोत्पादिनी शक्तिके योगसे मिट्टी पिण्ड बनती है' —कहने और समझनेकी ये दोनों ही प्रथा प्रशस्त हैं। अग्निनिष्ठ दाहिका शक्तिमें डाली गयी आहुति अग्निमें जिस प्रकार मान्य है, उसी प्रकार अग्निमें डाली गयी आहुति अग्निशक्तिमें मान्य है। ऐसी स्थितिमें शक्तिमान् के समस्त अवतार 'शक्ति' के और शक्तिके समस्त अवतार 'शक्तिमान्' के मान्य हैं। अध्यात्मरामायणमें अध्यात्म-अधिभूत-अधिदैव, जीव तथा माया (योगमाया) शक्तिसे अतीत परम प्रकाश तत्पदके लक्ष्यार्थ या अखण्डार्थके रूपमें श्रीरामभद्रको द्योतित करनेके अभिप्रायसे भगवती सीताने **'रामो न गच्छति'** आदि वाक्योंका प्रयोग किया है।

'तस्माज्ज्योति(एका ज्योति)रभूद् द्वेधा राधा-माधवरूपकम्' (सम्मोहनतन्त्र-गोपालसहस्रनाम १९, वेदपरिशिष्ट) के अनुसार तो श्रीराधा-कृष्ण भगवत्तत्त्व के अवतार सिद्ध होते हैं। उनकी अभिव्यक्तिमें मायाशक्ति दीपकी अभिव्यक्तिमें तैलादितुल्य अथवा जलतरङ्गकी अभिव्यक्तिमें वायुतुल्य केवल निमित्त सिद्ध होती है।

ब्रहासूत्रमें देवताको विग्रहवती माना गया है। 'त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्' के अनुसार भगवान्को सगुण-साकार विग्रहवान् मानना अत्यावश्यक है। यदि ईश्वर विग्रहवान् नहीं माना जायगा तो वह आकाशादिके तुल्य जड़ ही सिद्ध होगा— **'सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत।'** केनोपनिषदादिमें उमा-महेश्वरादिके अवतारका स्पष्ट उल्लेख है। **'इदं विष्णुर्विचक्रमे'** (वा०सं० ५।१५), **'अजायमानो बहुधा विजायते'** (वा०सं० ३१।१९) आदि श्रुतियोंमें भी अवतारका उल्लेख है। इससे साधिष्ठान-साभास शक्तिका चेतनत्व और शक्तियुक्त शिवमें जगत्-कर्तृत्वकी सिद्धि होती है। **'न तस्य कार्य करणं च विद्यते'** (श्वेता० ४।८), **'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते'** (श्वेता० ४।८), **'देवात्मशक्तिम्'** (श्वेता० १।३), **'शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः। यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः॥'** (विष्णु० १।३।२) आदि स्थलोंमें कार्य-कारण के निरासपूर्वक शक्तिका प्रतिपादन है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये वचन स्वरूप-सहकारिमात्रके प्रतिपादक हैं। शक्तिकी स्वरूपमात्रता भी नहीं हो सकती; क्योंकि **'परास्य'** इत्यादि षष्ठयन्तपदसे

स्वरूपातिरिक्तका प्रतिपादन किया गया है। **'अस्य शक्तिर्विविधा'** आदि वचनोंसे उस शक्तिकी अनेकता भी श्रुत होनेसे उसे एकरूप ब्रह्म भी कहना ठीक नहीं। उपक्रमोपसंहारादि षड्विध लिङ्गोंसे ईश्वरस्वरूपकी निश्चयात्मिका होनेसे उक्त श्रुतियोंको अर्थवाद भी नहीं कहा जा सकता। साथ ही नैयायिकादिकोंने भी इन वचनोंको ईश्वरस्वरूपपरक माना है, अतः उन्हें अर्थवाद बतलाना उचित नहीं। श्रुतिसिद्ध वस्तुका शुष्क तर्कसे अपलाप उचित नहीं—

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेव तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे न भवेत् प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम्॥
(ब्रहाविद्योपनिषद् ३२)

शाक्तागम-मतानुयायियोंकी दृष्टिसे अत्यन्त अन्तर्मुख-शक्ति शिवस्वरूप ही रहती है। वेदान्तियोंके यहाँ आश्रय-विषय-निरपेक्ष शक्ति सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वप्रकाश चिति ही रहती है। भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने माना है कि संकल्पके बिना संकल्प नहीं और संकल्पके बिना चित्त (मन) चित्त नहीं, चिद्रूप ही है। आगमविदोंने— **'चित्तं चिदिति जानीयात्'** (सदाचारानुसन्धानम् ३७) कहकर इसी तथ्यका प्रकाश किया है। मनकी माया(अविद्या)रूपता और आत्मरूपता निगमागम-सम्मत है। मननी-शक्तियुक्त आत्मा ही मन है, यह प्रपञ्च मनोमात्र है, मन्तव्ययोगसे विधुर मन सुप्तिमें अविद्यारूपसे और मन्तव्य-मिथ्यात्वके अनन्तर मननीशक्ति-विहीन मन आत्मरूपसे अवशिष्ट रहता है— **'यन्मनाङ्गननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते।'** (वाल्मीकीय योगवासिष्ठ, उत्पत्तिप्रकरण १०० ।१५.१/२), **'न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता'** (विवेकचूडामणि १६९), **'मुक्तौ निर्विषयं स्मृतम्'** (मैत्रायण्युपनिषद् ६ ।३४), **'विद्धि मायामनोमयम्'** (श्रीमद्भागवत ११ ।७ ।७)। सुप्तिमें लीन, समाधिमें विस्मृत और मोक्षमें बाधित मन आत्मरूपसे ही अवस्थित रहता है।

जीवको 'परा-प्रकृति' कहनेकी प्रथा (भगवद्गीता ७ ।५) इस बातको सिद्ध करती है कि अचित् ही प्रकृति नहीं, अपितु चित् भी प्रकृति या शक्ति है। इसी अभिप्रायसे शक्तिकी सच्चिदानन्दरूपता मानकर उसकी उपासनाकी प्रथा है। माना कि मृद्विहीन 'घट' मिथ्या है और घटविहीन मिट्टी जलानयनमें अक्षम, पर घटमें जलानयन मृद्योगसे ही है, वैसे ही ब्रह्मके बिना शक्ति मिथ्या है और शक्तिविहीन ब्रह्म प्रपञ्चरचनादिमें पङ्गु, पर शक्तिमें प्रपञ्चरचनादि-सामर्थ्य ब्रह्माधिष्ठित होने के कारण ही है। जिस प्रकार अमरवेल आश्रम-वृक्षके आश्रित रहकर ही पुष्पोंको उत्पन्न (अभिव्यक्त) करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार शक्ति अपने आश्रय ब्रह्मके आश्रित रहकर ही विविध विषयोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। वस्तुस्थिति यह है कि शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, गणेशादि वेद-शास्त्रसम्मत सभी रूपोंमें एक पूर्णतम तत्त्व ही व्यक्त होता है। पञ्चदेवों के माहात्म्य-प्रतिपादक सभी सद्-ग्रन्थोंमें अन्तिम स्वरूप एक ही मिलता है। इनके सहस्रनामोंमें अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। कारण पञ्चदेवोंके निर्गुण-निराकार और विराट् आदि सगुण-साकार-स्वरूपमें किसी प्रकारका वैषम्य नहीं है। अवतारवादकी दृष्टिसे उनके श्रीविग्रह और आयुधादिकोंको लेकर ही अवान्तर-भेद है।

पञ्चदेवोंमें उत्कर्षापकर्षके वारणकी प्रक्रिया इस प्रकार है। सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा निर्गुण-निराकार होते हुए भी अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे अन्तर्यामी सर्वेश्वर सगुण-निराकार-भावको प्राप्त होते हैं। स्थावर-जङ्गमात्मक प्रपञ्चके अभिन्ननिमित्तोपादानकारण होनेसे सबके नियमनमें सगुण-निराकार परमात्मा समर्थ होते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अहं, चित्त, बुद्धि, मन और अन्तःकरणके योगसे क्रमशः शिव, गणपति, शक्ति, सूर्य और वासुदेव (विष्णु)-भावको प्राप्त होते हैं। **'नहि निन्दा निन्द्यं निन्दयितुं प्रवर्तते अपितु विधेयं (स्तव्यं) स्तोतुम्'** (निन्दा निन्द्यकी निन्दामें प्रवृत्त न होकर स्तुत्यकी स्तुतिमें पर्यवसित-प्रतिफलित होती है।) इस रीतिसे वस्तुतः पाँचोंका उत्कर्ष है। विविध प्रकारके उपासकोंका योगक्षेम वहन करनेके अभिप्रायसे प्रसङ्गानुसार किसी एकका उत्कर्ष स्थापित किया जाता है। उत्कर्षस्थापनकी विधि यह है कि अपने इष्टदेवको आकाश

और अन्तःकरणमें अधिदैव-क्षेत्रज्ञरूपसे उपास्य मानना चाहिये। भूतचतुष्टयका कारण आकाश और अन्तःकरण-चतुष्टयका कारण (आश्रय) अन्तःकरण स्वयं है। आकाश और अन्तःकरणके भी नियामक इनमें अन्तर्यामिरूपसे प्रतिष्ठित सर्वेश्वरका चरम उत्कर्ष स्वाभाविक है। इसी रूपसे अपने इष्टदेवकी आराधना अपेक्षित है। श्रीमद्भागवतमें विराट्-विग्रहको व्युत्थित (उज्जीवित) करने में असमर्थ ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंका उल्लेख करनेके अनन्तर चित्तरूप अध्यात्मसहित क्षेत्रज्ञ वासुदेवके प्रवेशसे विराट् को उज्जीवित सिद्धकर वासुदेव भगवान्‌का उत्कर्ष स्थापित किया गया है। ध्यान रहे कि चित्त श्रीमद्भागवत के अनुसार सत्त्वप्रधान महत्तत्त्व है। यह सर्वकार्योंमें प्रथम है। यही कारण है कि उसके योगसे चैत्यरूप श्रीविष्णुत्तत्त्वका उत्कर्ष ख्यापित किया गया है। 'सूतसंहिता' के अनुसार 'अहं' के अधिदैव शिवको ही क्षेत्रज्ञ मानकर तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहं, विशेषणरूप अन्तःकरण और उपाधिरूप अन्तःकरणके योगसे व्यूहात्मक पञ्चविध शिवकी अपेक्षा अन्तःकरणोपहित मूलात्मक शिवका चरम उत्कर्ष सिद्ध है।

भक्तोंको अभीष्ट भिन्न-भिन्न स्वरूपोंके दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य-माधुर्य-सौरस्य-सौगन्ध्यादि लोकोत्तर गुणगणोंमें चित्तके आसक्त होनेके अनन्तर अदृश्य, अग्राह्य, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य परमतत्त्व सुस्पष्ट रूपसे भासित होता है। इसमें दार्शनिकता यह है कि जैसे— **'सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म'** (सर्वसारोपनिषद्) आदि स्थलोंमें सत्य, ज्ञानादि ब्रह्मके विशेषण या गुणसरीखे परिलक्षित होनेपर भी वस्तुतः ब्रह्मके लक्षण होनेसे ब्रह्मरूप ही हैं अथवा ये लक्षक होनेसे ब्रह्म निर्गुण ही है, वैसे ही साम्य, असङ्गता आदि गुणगण सच्चिदानन्दमात्र होनेसे ब्रह्मरूप ही है। जैसे तत्त्वज्ञोंके कर्म अकर्ममें अकर्मदर्शनके कारण (अविक्रिय आत्माको अकर्ता समझने के कारण) अर्थात् कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहंकृति, नानात्वबुद्धि और अभिनिवेशसे विरहित होकर अनुष्ठित होनेके कारण 'अकर्म' हैं, तद्वत् अविद्या, काम और कर्मसे विरहित भगवद्विग्रह-संलग्न दिव्यातिदिव्य गुणगण अगुण होनेसे अगुणके ही प्रापक हैं। विशुद्ध लीलाशक्तिके योगसे अभिव्यक्त नाम-रूप-लीला-धाम आदि भी भगवान्‌के ही अभिव्यञ्जक हैं। (क्रमशः)

साभार- विक्रम सम्वत् २०४३ कल्याण मासिकपत्रिकाके वर्ष-६१के विशेषाङ्क- **'शक्ति-उपासना अङ्क'** में परमपूज्य श्रीधर्महृदयमहाभाग स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज का लेख। पृ० ११९-१२४।

सङ्कलन एवं टंकण—

श्रीधर्मवीर दल

https://t.me/Dharmveer_Dal